P: ISSN NO.: 2321-290X RNI : UPBIL/2013/55327 VOL-6 * ISSUE-5 * (Part-1) January- 2019
E: ISSN NO.: 2349-980X **Shrinkhla Ek Shodhparak Vaicharik Patrika**

भारत में लोकतंत्र : एक अध्ययन

मीता सिंह
सहायक आचार्य,
राजनीति विज्ञान विभाग,
एस.डी.एम. कॉलेज ऑफ एजुकेशन,
देशलपुर, नुना माजरा,
बहादुरगढ़, हरियाणा, भारत

सारांश

स्वाधीनता के उपरांत भारत में राजनीतिक व्यवस्था की भूमिका एक अर्ध–सामंती, परम्परावादी, निर्धन समाज को विकसित तथा परिवर्तित करने की थी। अपनी वैचारिक धारणाओं एवं सामाजिक पृष्ठभूमि के कारण राष्ट्रीय विशिष्ट वर्ग का विश्वास था कि ऐसा परिवर्तन अहिंसा एवं सहयोग पर आधारित होना चाहिए। इसी कारण भारतीय संविधान निर्माताओ ने नव स्वतंत्र भारत के लिए उदारवादी लोकतंत्र के रास्ते को चुना और संसदीय प्रणाली के वेस्टमिंनस्टर प्रतिमान को अपनाया है। पिछले लगभग 70 वर्षो में इस व्यवस्था ने कई उतार–चढ़ाव देखे थे।

भारत का लोकतंत्र अपने आप में अनूठा है। भारत का लोकतंत्र नागरिकों की संख्या की दृष्टि से विश्व का सबसे बड़ा लोकतंत्र है। देश में लोकतंत्र इस दृष्टि से भी मिसाल है कि ऐतिहासिक दृष्टि से भी दीर्घकालिक राजतन्त्रात्मक शासन प्रणाली, सैकड़ों वर्षो के उपनिवेशी शासन से मुक्ति के रूप में कायम रहा है। वैश्विक परिदृश्य में भारत की पहचान अक्षुण्ण व समय बीतने के साथ मजबूत होते लोकतन्त्र तथा गौरवशाली गणतन्त्र के रूप में है। आज दुनिया का सबसे बड़ा गणतन्त्र भारत अपने अंदर करीब दस लाख छोटे ग्रामीण गणराज्य बसाए हुए है जो, अपने मामलों का प्रबन्धन स्वशासन से करते है। इन्हें पंचायती राज कहा जाता ह। जीवन्त चुनावी लोकतन्त्र भारत की सबसे मजबूत पहचान है।

पीछे मुड़कर देखें तो 15 अगस्त, 1947 को विभाजन के सदमे से उजड़े देश में 85 प्रतिशत निरक्षरता, गरीबी से ग्रस्त एक गैर बराबरी वाले जाति आधारित विभक्त समाज ने जब समान वयस्क मताधिकार के साथ लोकतान्त्रिक गणराज्य अपनाया तब विकसित देशों ने इसकी असफलता की भविष्यवाणी की थी। देश एवं देशवासियों ने न केवल देश को अखण्ड रखा बल्कि समय के साथ संसदीय लोकतान्त्रिक व्यवस्था को मजबूत बनाया। पिछली आधी शताब्दी में जब एशिया, अफ्रीका, लेटिन अमेरिका एवं भारत के पड़ोस के राष्ट्रों में अधिनायकवादी उठा–पटकों, फौजी शासनों, वैध सरकारों की तख्ता पलट की घटनाएं होती रही, किन्तु भारत में लोकतंत्र अविचल रहा। विगत 7 दशकों में भारतीय निर्वाचन आयोग ने लोकसभा के 16 एवं राज्य विधानसभाओं के 360 से अधिक चुनाव बिना समय सीमा चुकाये करवाते हुये शान्तिपूर्ण, व्यवस्थित और लोकतान्त्रिक तरीके से सत्ता का हस्तान्तरण किया है।

मुख्य शब्द : लोकतंत्र, कांग्रेस, नेहरू, एशिया, अफ्रीका, स्वतंत्रता, समानता, न्याय।

प्रस्तावना

प्राचीनकाल से ही मानव जाति ने शासन व्यवस्था को संचालित करने के लिए किसी न किसी शासन व्यवस्था का सहारा लिया है। मनुष्य जब से समूह में रहने लगा, तभी से उसके सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक सम्बंधों को नियन्त्रित करने के लिए शासन व्यवस्था की शुरुआत हुई। राजनीतिक विचारकों ने अनेक शासन व्यवस्थाओं का उल्लेख किया है, जिसमें राजतंत्र, कुलीनतंत्र, लोकतंत्र, अधिनायकतंत्र,, साम्यवादी शासन प्रणाली सहित अन्य शासन व्यवस्थाएं शामिल हैं। ऐसे में लोकतंत्र एक ऐसी शासन प्रणाली है जिसमें जनता अपने प्रतिनिधियों या शासन करने वाले वर्ग का स्वयं निर्वाचन करती है। प्रजातंत्र, जनतंत्र अथवा लोकतंत्र इन तीनों शब्दों का अर्थ है – 'जनता का शासन'। प्रत्यक्ष–लोकतंत्र में जनता स्वयं शासन सूत्र धारण करती है जबकि अप्रत्यक्ष में जनता की इच्छा के अनुकूल चुने हुए प्रतिनिधियों के द्वारा शासन होता है। आज विश्व में राजनीतिक प्रणाली के रूप में प्रजातंत्र सबसे महत्वपूर्ण

आदर्श प्रणाली के रूप में स्थापित हो गया है। 100 से अधिक देशों में प्रजातंत्र को शासन प्रणाली के रूप में अपनाया गया है। जिन देशों में प्रजातांत्रिक शासन प्रणाली नहीं है वहां के शासक स्वयं को प्रजातांत्रिक बनाने में लगे हैं या फिर जनता ने अधिनायकवाद के विरुद्ध संघर्ष का बिगुल बजा रखा है।

स्वतंत्रता, समानता और बन्धुत्व लोकतंत्र के आधार हैं। स्वाधीनता के बाद भारत ने एक ऐसे लोकतंत्र को अपनाया, जिसमें मर्यादा, संयम और अनुशासन की व्यवस्था है। लोकतांत्रिक शासन प्रणाली की अपनी विशेषता है कि वह जनता का, जनता के लिए और जनता के द्वारा संचालित शासन होता है। शायद इसी कारण पूरे विश्व में लोकतंत्र के विचार के प्रति अभूतपूर्व समर्थन का भाव है। पं. जवाहर लाल नेहरू ने 14 अगस्त, 1947 की मध्य रात्रि को जब भारत को विदेशो हुकूमत से स्वतंत्रता प्राप्त हुई तब 'नियति से भेंट' (ट्राइस्ट विद डेस्टिनी) के नाम से चर्चित अपने उद्‌बोधन में कहा– 'बहुत वर्ष हुए हमने भाग्य से एक सौदा किया था और अब अपनी प्रतिज्ञा पूरी करने का समय आया है।' जिस समय उन्होंने यह शब्द कहे उस दौर में उनके सामने यह स्पष्ट था कि स्वतंत्र भारत कौन सा रास्ता अपनाता है।

पं. नेहरू ने लिखा था कि राष्ट्रीय कांग्रेस का उद्देश्य स्वतंत्रता तथा लोकतांत्रिक राज्य की स्थापना करना है। 'स्वतंत्रता' मिलने से एक उद्‌देश्य या एक सपना तो पूरा हो गया लेकिन दूसरा उद्‌देश्य या सपना 'लोकतांत्रिक राज्य' संविधान सभा में पूरा हुआ। संविधान की प्रस्तावना में लिखा है कि 'भारत एक सम्पूर्ण प्रभुत्वसम्पन्न लोकतंत्रात्मक गणराज्य होगा।' भारत की प्राचीन परम्परागत ग्राम पंचायती व्यवस्था को भी लोकतंत्र या गणराज्य का पर्याय माना जाता है। प्रयोजन की स्पष्टता के आधार पर तथा दायित्व बोध की गहनता की कसौटी पर प्राचीन व्यवसाय में लोकहित सम्वर्द्धन के तत्व अवश्य ही देखे गए। समयोचित भिन्नता भी उसी मात्रा में प्रस्तुत है।

अध्ययन का उद्‌देश्य

प्रस्तुत शोध अध्ययन भारत में लोकतंत्र पर आधारित है तथा इसके अध्ययन के उद्‌देश्य निम्नलिखित है–

1. लोकतंत्र के अर्थ एवं महत्व का अध्ययन करना।
2. भारत के सन्दर्भ में लोकतांत्रिक शासन प्रणाली की सफलता व असफलता का अध्ययन करना।
3. लोकतंत्र के गुणों एवं कमियों का अध्ययन करना।
4. भारत में लोकतंत्र के समक्ष उपस्थित चुनौतियों का अध्ययन करना।
5. भारत में लोकतंत्र को ओर अधिक प्रभावी बनाने के लिए संभव उपायों का अध्ययन करना।
6. लोगों में लोकतंत्र के प्रति जागरुकता बढ़ाना।
7. लोगों को लोकतांत्रिक मूल्यों यथा–स्वतंत्रता, समानता तथा न्याय के प्रति जागरुक करना।

शोध पद्धति

शोध विषय की व्याख्या और अध्ययन के उद्‌देश्य के उपरोक्त विवरण से स्पष्ट है कि शोध विषय के आयाम सैद्धान्तिक एवं व्यावहारिक दोनों प्रकार के ही है। वर्तमान अध्ययन में वस्तुनिष्ठ एवं उच्च स्तरीय विश्वसनीयता लाने के लिए यथासंभव प्राथमिक एवं आवश्यक द्वितीयक स्रोतों का उपयोग किया गया है। शोधकर्त्ता ने साक्षात्कार, अनुसूची एवं प्रश्नावली के माध्यम से प्राथमिक आंकडें एकत्रित करने का प्रयास किया है तथा द्वितीयक स्रोतों के तहत इस विषय पर विभिन्न विद्वानों द्वारा लिखी गई रचनाओं, सेमिनारों एवं विभिन्न प्रतिवेदनों से सामग्री प्राप्त की है।

साहित्यावलोकन

भारत में लोकतंत्र के सन्दर्भ में किय गये इस शोध के महत्व, आवश्यकता, उद्‌देश्यों तथा शोध पद्धति का विवरण प्रस्तुत करते हुए इस विषय पर लिखे गये साहित्य का अवलोकन, विश्लेषण एवं मूल्यांकन किया गया है।

धर्मचन्द जैन ने अपनी रचना 'भारतीय लोकतंत्र' 2000 में बताया है कि राष्ट्रीय आंदोलन में लोकतंत्र, समाजवाद तथा धर्मनिरपेक्षता के जिन महान मूल्यों की परिकल्पना की गई थी, उन्हें संविधान निर्माताओं ने संविधान में समाहित करते हुए देश में सम्पूर्ण प्रभुत्व सम्पन्न लोकतांत्रिक गणराज्य की नींव डाली है।

ए. एस. नारंग ने अपनी रचना 'भारतीय शासन एवं राजनीति' 2010 में लिखा है कि भारत अपनी स्वतंत्रता के पचास वर्ष पूरे कर चुका है। इन पचास वर्षो के समय में भारतीय सांविधानिक व्यवस्था, राजनीतिक प्रक्रिया तथा विकसित होने वाली प्रवृतियां अपने आप में महत्वपूर्ण तथा विवादीय घटनाएँ है। अनेक अन्य नव स्वतंत्र तथा नव उदित विकासशील देशों की भांति स्वतंत्र भारत की राजनीतिक व्यवस्था तथा प्रशासन सामाजिक–आर्थिक विकास व परिवतन के साधन थे। यहां विकसित पश्चिमी देशों के विपरीत लोकतंत्र का विकास तथा चलन एक विशेष सामाजिक आर्थिक परिवेश में और साथ ही उसे बदलने के संदर्भ में हो रहा है।

जनक राज जय की रचना 'भारतीय लोकतंत्र और राष्ट्रपति' 2009 में लिखा है कि भारत में संसदीय लोकतंत्र में हमारे राष्ट्रपतियों की भूमिका असाधारण है। भारत का संसदीय लोकतंत्र दुनिया का सबसे बड़ा लोकतत्र है। देश के सभी राष्ट्रपति महान् व्यक्तित्व के धनी रहे है। उन्होंने संघर्ष, मेहनत और लगन के द्वारा अपने व्यक्तित्व का निर्माण किया है।

मोहन लाल गुप्ता की पुस्तक 'भारत में साम्प्रदायिकता की समस्या एवं हिन्दू प्रतिरोध का इतिहास' 2018 में बताया गया है कि साम्प्रदायिकता की वजह से देश का विभाजन हुआ और देश के तीन टुकड़े हुए। आज भी देश की निरीह जनता साम्प्रदायिक हिंसक घटनाओं में बेरहमी से मारी जाती है। यह मानव मात्र की मानसिक समस्या है जो सम्पूर्ण विश्व में व्याप्त है। इस पुस्तक में भारत में साम्प्रदायिकता की समस्या के जन्म एवं विकास तथा हिन्दू प्रतिरोध का संक्षिप्त इतिहास लिखा गया है

तथा भारत में साम्प्रदायिकता को लोकतंत्र के मार्ग में सबसे बड़ी समस्या बताया है जिसका निराकरण जरुरी है।

भारत में लोकतंत्र का विकास

विश्व के सभी लोकतांत्रिक देशों की भांति भारतीय राजनीतिक व्यवस्था भी कुछ लक्ष्यों की प्राप्ति की ओर इंगित करती है। भारतीय लोकतंत्र का लक्ष्य, देश में प्रचलित शासन व्यवस्था के अन्तर्गत समस्त वयस्क नागरिकों की शासन संचालन में भागीदारी सुनिश्चित कर, राष्ट्र के लिए गणतंत्रात्मक धर्मनिरपेक्ष शासन व्यवस्था का निर्माण करना, नागरिकों के लिए एक स्वतंत्रता, समानता और भातृत्व का पर्यावरण तैयार करना, आर्थिक और राजनीतिक न्याय, व्यक्ति की गरिमा तथा राष्ट्र की एकता और अखण्डता को सुनिश्चित करना माना जाता है। अन्य सभी प्रचलित वैकल्पिक शासन व्यवस्थाओं की तुलना में लोकतंत्र को वर्तमान समय में अधिक पसन्द किया जाता है किन्तु लोकतांत्रिक शासन व्यवस्था के कामकाज से संतुष्ट होने वालों की संख्या इतनी अधिक नहीं होती, जितनी इस व्यवस्था को स्थापित करने की इच्छा रखने वालो की होती है।

भारत में आधुनिक लोकतंत्र को प्रारंभ हुए आधी सदी से अधिक समय गुजर गया हैं। लोकतंत्र किसी प्रकार से नई व्यवस्था नहीं मानी जा सकती, परन्तु सरकार के स्वरूप के विषय में नवचिन्तन एवं नव प्रारूप अवश्य देखे जा सकते हैं। भारत में भी यूनानी नगर–राज्यों के समान लोकतंत्र के विकास में प्राचीन गणराज्य महत्वपूर्ण रहे हैं। इन गणराज्यों में सम्पूर्ण जनता समायोजन, भागीदारी, पर्यावरण में शासन सम्बन्धी प्रश्नों पर विचार–विमर्श करती थी। गणराज्यों में पंथ निरपेक्षता, अंतर साम्प्रदायिक सद्भाव और मानववादी विचारों की प्राथमिकता थी। सम्मिश्रित संस्कृति को विशेष सम्बल प्राप्त हुआ।

अट्ठारहवीं सदी के मध्य भारत की राजनीतिक स्थिति के कारण कम्पनी के महत्वाकांक्षी सदस्यों ने भारत पर कम्पनी के शासन की ओर ध्यान केन्द्रित किया। परिणामस्वरूप कम्पनी का शक्ति की राजनीति का खेल शुरू हुआ। उन्नीसवीं सदी के प्रारंभ तक कम्पनी ने भारत के बड़े भाग पर एकाधिकार स्थापित कर लिया। लोकतंत्र को समाप्त करके साम्राज्यवादी शासन की स्थापना का प्रारंभ रेग्यूलेटिंग एक्ट (1773) से शुरू हुआ। यह एक्ट मुख्यतः ब्रिटिश ईस्ट इण्डिया कम्पनी के शासन को सुदृढ़, व्यवस्थित और सुनिश्चित करना था, जो पूर्ण रूप से लोकतंत्र के प्रतिरूप से दूर था। 1784 ई. में इसी उद्देष्य से 'पिट्स इण्डिया एक्ट' से प्रारंभ कर 1813, 1833 तथा 1853 में अधिकार पत्र पारित किए गए। इस प्रकार ब्रिटिश कम्पनी के शासन काल में सांविधानिक सुधार अधिनियम पारित हुए, परन्तु ये सभी प्रजातंत्र की आत्मा और स्वरूप के विरोधी थे। इन अधिनियमों को भारत में लोकतंत्र का महत्वपूर्ण सोपान नहीं कहा जा सकता है, क्योंकि इनका प्रभाव ब्रिटिश भारत पर तो हुआ ही, देशो रियासतें भी इनके प्रभाव से मुक्त नहीं रहीं और धीरे–धीरे विरोधी स्वरों की उग्रता भारत से कम्पनी के शासन की समाप्ति और ब्रिटिश संसद द्वारा सत्ता हस्तांतरण और भारत के श्रेष्ठतर शासन के लिए कानून (1858) पारित किया गया। नवम्बर, 1858 में सम्राट ने भारत का शासन अपने हाथ में ले लिया। भारतीय संदर्भ में एक दृष्टि से इस घोषणा ने लोक भागीदारी और उत्तरदायी शासन की आकांक्षा पर प्रहार किया। विदेशो शासन में 'स्वशासन और सुशासन' दोनों को निषिद्ध माना गया।

1858 के पश्चात् देश भक्ति की लहर रोकने का जो प्रयास ब्रिटिश संसद द्वारा किया गया, उससे लोकतंत्र का विकास रुक तो गया, परन्तु भारतीयों को प्रशासन के साथ कतिपय रूप में संयुक्त करने की नीति द्वारा 1861 का 'भारतीय परिषद अधिनियम' पारित किया गया। कार्यकारिणी परिषद की स्थापना की गई। इस परिषद ने कुछ समय बाद 'लघु संसद' का रूप धारण कर लिया। इस दृष्टि से 1861 का अधिनियम परतंत्र भारत में लोकतंत्र के विकास में महत्वपूर्ण कड़ी माना जाता है। वायसराय लॉर्ड रिपन का अंग्रेजी शासन के दौरान भारत में स्थानीय शासन संस्थाओं को अमलीजामा पहनाने में महत्वपूर्ण योगदान रहा। सन् 1878 में 'वर्नाक्यूलर एक्ट' और 'आर्म्स एक्ट' भारतीय समाचार पत्रों पर नियंत्रण और भारतीय शस्त्र अधिनियम पारित हुए। लोकतांत्रिक स्वतंत्रता और समानता पर सशक्त प्रहार जारी रहा।

1885–90 के काल में भारतीय शासन और गृह सरकार के मध्य चल रहे विरोध के कारण, लॉर्ड डफरिन की सिफारिशों के आधार पर गवर्नर–जनरल ने एक योजना निर्मित की और इसके आधार पर 1890 में एक अन्य विधेयक पारित किया गया। आयरलैण्ड की समस्या से ग्रस्त होने के कारण लोक सदन ने इस विधेयक को 26 मई, 1892 को पारित किया। इसे 'भारतीय परिषद अधिनियम (1892)' नाम दिया गया। भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस ने अपने प्रथम सम्मेलन (1885) में मांग की कि व्यवस्थापिका कौंसिल को चुने, बजट पर बहस और प्रश्न का अधिकार मिले, सरकार और कौंसिल के मध्य लोकसभा एक स्थाई कमेटी के रूप में स्थापित हो। भारत विरोधी और अविवेकपूर्ण नीतियों से 1905 के बंगाल विभाजन की परिणति स्वाभाविक हुई। ब्रिटिश शासकीय हितों के रक्षक स्थायितत्व के लिए कतिपय संशोधन भी आवश्यक समझे गए। गोखले के प्रस्तुत सुझावों को न्यूनतम स्वरूप दिया गया लेकिन, अन्ततः ब्रिटिश संसद ने भारतीय परिषद् अधिनियम 1909 'मार्ले मिंटो सुधार कानून' के रूप में पारित किया।

अधिनियम के अन्तर्गत केन्द्रीय विधायी परिषद में सरकारी बहुमत और विधायी परिषदों की शक्तियों के अत्यधिक सीमित होने के परिणामस्वरूप, उत्तरदायी शासन भ्रम मात्र बना रहा। साम्प्रदायिकता को नव संरचित प्रस्तावना भी प्राप्त हुई। एक दशक के अन्तराल के बाद 20 अगस्त 1917 को घोषणा द्वारा आगामी अधिनियम की संभावनाओं को इंगित किया गया। 18 दिसम्बर, 1919 को 'मोन्टेग्यू–चैम्सफोर्ड अधिनियम' पारित हुआ। 1919 के

अधिनियम के अन्तर्गत तीन व्यवस्थाएं महत्वपूर्ण थीं। उत्तरदायी शासन का परिसीमित प्रारंभ, द्वेध शासन और देशो रियासतों की भागीदारी में भूमिका। सिद्धान्त और व्यावहारिक दृष्टि से दोषपूर्ण हाने के फलस्वरूप 1919 का अधिनियम सांवैधानिक विकास प्रक्रिया का एक चरण मात्र बन कर रह गया। उत्तरदायी शासन, स्वशासी संस्थाओं की सम्भावनाओं और भारतीयों की अधिकाधिक भागीदारी की अपेक्षाओं के विषय में महत्वपूर्ण आयामों को नकारा गया। 8 नवम्बर, 1872 के पश्चात् ब्रिटिश सरकार द्वारा भारतीय जनता को एक सर्वसम्मत शासन विधान की योजना की घोषणा को अस्वीकारते हुए साइमन कमीशन का बहिष्कार किया गया। परिणामस्वरूप लखनऊ समझौता हुआ और 1928 में नेहरू रिपोर्ट के अन्तर्गत औपनिवेश स्वराज्य की घोषणा की गई। 1929 में लाहौर के कांग्रेस अधिवेशन में पूर्ण स्वतंत्रता का लक्ष्य घोषित किया गया। 26 जनवरी, 1930 को सम्पूर्ण भारत में स्वतंत्रता दिवस मनाया गया।

लन्दन में 1930, 1931, 1932 में तीन गोलमेज सम्मेलन हुए, जिससे भारत के संभावित लोकतांत्रिक संविधान के सम्बन्ध में निश्चय किया जा सके। अगस्त, 1932 में रेम्जे मैकडानल्ड ने अपने प्रसिद्ध साम्प्रदायिक निर्णय को घोषित किया और मार्च, 1933 में 'श्वेत पत्र' प्रकाशित हुआ। 'श्वेतपत्र' के अन्तर्गत प्रान्तों में उत्तरदायी शासन की स्थापना और केन्द्र में आंशिक उत्तरदायी शासन की स्थापना का सुझाव था। सुझावों को स्वीकारते हुए और संयुक्त प्रवर समिति की रिपोर्ट के आधार पर ब्रिटिश संसद ने 1935 का भारत सरकार अधिनियम पारित किया। यह अधिनियम शब्द आडम्बर युक्त प्रावधानों का संकलन मात्र सिद्ध हुआ और लोकतंत्र की आस्था, व्यावहारिकता से विपरीत, आवरणीय घोषणा बन कर रह गया। 1935 का अधिनियम लोकतंत्र की भावनाएं प्रज्वलित करने में कारक बना। भारत की स्वतंत्रता और संविधान की क्रियान्विति के रूप में एक सम्पूर्ण प्रभुत्वसम्पन्न लोकतंत्रात्मक गणराज्य की स्थापना की पृष्ठभूमि, प्रयोजन ओर सम्भावनाओं मे लोकतांत्रिक मूल्यों और प्रतिबद्धता के स्पष्ट प्रमाण हैं।

स्वतंत्रता के बाद भारत में लोकतंत्र

स्वतंत्रता के बाद भारत में लोकतंत्र के विकास में दो महत्वपूर्ण कारक रहे हैं जो कि लोकतंत्रीय पर्यावरण को भी सारगर्भित बनाते रहे हैं। संवैधानिक दृष्टि से भारत का संविधान लिखित और विस्तृत है। स्वतंत्रता, समानता, न्याय, वयस्क मताधिकार, उत्तरदायी शासन, सामाजिक न्याय, अवसर की समानता और अनुकूलता, लोकतंत्र के आधार हैं। पथ निरपेक्षता और समाजवादी, दिशा दृष्टि प्रभावी कारक हैं। सैद्धान्तिक और व्यावहारिक दृष्टि से लोकतांत्रिक संकल्पों की निर्णायक स्थिति स्पष्ट है। लोकतंत्र को नेतृत्व की उतनी ही आवश्यकता है जितनी परिपक्व और संगठित नागरिकों की। राष्ट्रीय आन्दोलन से उत्प्रेरित नेतृत्व की क्षमता, दृष्टि और प्रतिबद्धता को आधार मानकर स्मरणीय है कि नेतृत्व की इस विशिष्टता को अपेक्षाकृत भारतीय राजनीतिक इतिहास के प्रारंभिक युग में अधिक सक्रिय देखा गया। राष्ट्रीय आन्दोलन का नेतृत्व ही राष्ट्र निर्माण और राज्य व्यवस्था निर्माण के प्रयोजनों का नेतृत्व बना। लोकतांत्रिक मूल्यों के परिप्रेक्ष्य में इस नेतृत्व की भूमिका इस कारण महत्वपूर्ण नहीं कि प्रयोजन सिद्धि की परिणति असाधारण थी, बल्कि इसलिए कि अनेक प्रत्याशित, स्वाभाविक, अपत्याशित चुनौतियां, संकट और गतिरोधों के बावजूद भारतीय लोकतंत्र न केवल व्यवस्था संरक्षण में सफल रहा है बल्कि परिवर्तित परिस्थितियों में विरोधाभासों के बावजूद आधारभूत विश्वास और संकल्प में कोई परिवर्तन व्यक्त नहीं है। नागरिक समाज की निर्णायकता और सत्ता की वैधता के मूल्यों के विषय में किसी समझौते को स्वीकार नहीं किया गया। संस्थाओं और प्रक्रियाओं की सांवैधानिकता को यथासंभव सषक्त और सार्वभौमिक बनाने के प्रत्येक प्रयास लोकतंत्र की सुश्रुप्त क्षमता का परिचायक है।

भारतीय लोकतंत्र के समक्ष चुनौतियां

लोकतंत्र को हर समस्या के समाधान की अचूक औषधि मान लिया गया है। लोकतंत्र की लोकप्रियता और इसके प्रति दिलचस्पी के कारण ही प्रायः यह मानकर चलते हैं कि लोकतंत्र सभी सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक समस्याओं का समाधान कर सकता है, लेकिन जब आशाएं पूरी नहीं होती हैं तो लोकतंत्र की अवधारणा को ही दोष देने लगते हैं। लोकतंत्र से जिन परिणामों की उम्मीद की जाती है, उन पर सावधानीपूर्वक विचार करते समय यह स्मरण रखना आवश्यक है कि लोकतंत्र शासन का स्वरूप मात्र है। यह कुछ लक्ष्या को प्राप्त करने की स्थितियों का निर्माण तो कर सकता है, लेकिन प्रदान नहीं कर सकता। लोकतांत्रिक शासन व्यवस्था के अन्तर्गत नागरिकों को ही इन स्थितियों का न्यायपूर्ण लाभ देकर अपने लक्ष्यों को प्राप्त करना होता है। लोकतंत्र से तो उत्तरदायी, जिम्मेदार और जनता द्वारा निर्वाचित वैध शासन की अपेक्षा की जा सकती है। इससे देश के नागरिकों को अपना शासन चुनने का अधिकार और उस शासन पर नियंत्रण रखने की सुविधा प्राप्त होती है। यह भी आवश्यक है कि लोकतंत्र को सफल बनाने के लिए नागरिकों को निर्णय प्रक्रिया में भागीदारी करने के लिए सक्षम होना चाहिए ताकि एक उत्तरदायी एवं जिम्मेदार सरकार का गठन हो सके। सरकार देशवासियों की आवश्यकताओं की पूर्ति कर सके।

यह सत्य है कि वर्तमान संदर्भो में लोकतंत्र को न तो कोई अन्य शासन व्यवस्था चुनौती दे सकने की स्थिति में है और न ही कोई अन्य शासन व्यवस्था इसकी प्रतिद्वन्द्वी बन सकती है। लेकिन जैसे–जैसे लोकतंत्र को समझने का प्रयास करते हैं वैसे–वैसे पता चलता है कि लोकतंत्र से बहुत कुछ हासिल किया जा सकता है, फिर भी इसका पूर्णतः सकारात्मक लाभ अभी तक प्राप्त नहीं किया जा सका है। इसका अर्थ है कि लोकतांत्रिक व्यवस्था यद्यपि सर्वश्रेष्ठ शासन व्सवस्था मानी जाती है, पर इसके विस्तार की चुनौती है। इसके अन्तर्गत लोकतंत्र की सभी सुविधाओं, इसके सभी लक्ष्यों तथा इसके मूलभूत सिद्धान्तों को विस्तृत रूप से सभी सामाजिक समूहों और

संस्थाओं में लागू करना सम्मिलित है। भारतीय शासन व्यवस्था सन् 1950 से ही लोकतंत्र के मूलभूत लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए अग्रसर है। एक ओर भारत को आम चुनावों के द्वारा लोकतांत्रिक परम्पराओं को आत्मसात करने में सफलता मिली है, वहीं इस शासन व्यवस्था के अन्तर्गत जातिवाद, भाषावाद, साम्प्रदायिकता, क्षेत्रीयता, भ्रष्टाचार की राजनीति इत्यादि से उत्पन्न अनेक समस्याओं ने राष्ट्रीय एकता के मार्ग में बाधा उत्पन्न कर भारतीय लोकतंत्र को कमजोर करने वाली चुनौतियों के रूप में उपस्थिति दर्ज कराइ है। ऐसा प्रतीत होता है कि चुनौतियां भारतीय लोकतंत्र को निर्बल बनाने में अपनी प्रभावी एवं अहम भूमिका का निर्वाह कर रही हैं।

प्रमुख सुझाव

भारत में लोकतंत्र को सुदढ़ बनाने के लिए शोधकर्त्ता द्वारा निम्न सुझाव दिये गये है यथा–

1. चूकिं लोकतंत्र का आधार जनता है इसलिए लोकतंत्र की सफलता के लिए नागरिकों में लोकतांत्रिक भावना निहित होनी चाहिए तथा जनता को अपने कर्त्तव्यों के प्रति जिम्मेदार होना चाहिए।
2. जनता को शिक्षित तथा जागरुक होना चाहिए। सतत् जागरुकता ही लोकतंत्र का मूल्य है।
3. देश में आर्थिक एवं सामाजिक समानता स्थापित होनी चाहिए। प्रत्येक व्यक्ति को आर्थिक सुरक्षा प्राप्त होनी चाहिए।
4. राजनीतिक दल, लोकतंत्र के लिए जरुरी है इसलिए सभी राजनीतिक दलों को जातीयता व धार्मिकता से ऊपर उठकर निष्पक्ष होना चाहिए।
5. देश के नागरिकों को नैतिक एवं ईमानदार होना चाहिए। नागरिकों का भ्रष्टाचार पर रोक लगाने के लिए प्रयास करने चाहिए।
6. जनता को अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता होनी चाहिए तथा स्वतंत्र व निष्पक्ष मीडिया होना चाहिए।
7. स्वतंत्र एवं निष्पक्ष न्यायपालिका होनी चाहिए।
8. लोकतंत्र में हमेषा सही समय पर निष्पक्ष चुनाव होने चाहिए।
9. देश के नेताओं को कुशल एवं चरित्रवान होना चाहिए।
10. लोकतंत्र में नेताओं के लिए कुछ अनिवार्य शैक्षणिक योग्यताएं होनी चाहिए।
11. लोकतंत्र में राजनेताओं को एक सेवानिवृत्ति की भी आयु निर्धारित होनी चाहिए। ताकि पुराने नेताओं की सेवानिवृत्ति के बाद नवयुवकों को राजनीति में आने का मौका मिल सके।

निष्कर्ष

भारत के लोकतंत्र को दुनियाभर से पशंसा मिली है। देश के हर नागरिक को वोट देने का अधिकार उनके जाति, धर्म, रंग, लिंग या शिक्षा के आधार पर किसी भी भेदभाव के बिना दिया गया है। देश की विशाल सांस्कृतिक, धार्मिक और भाषाई विविधता भारतीय लोकतंत्र के लिए बड़ी चुनौती है। लोगों के बीच यह मतभेद गंभीर चिंता का कारण है। भारत में लोकतंत्र के सुचारु कार्य को सुनिश्चित करने के लिए इन विभाजनकारी प्रवृत्तियों को रोकने की आवश्यकता है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

जैन, धर्मचन्द्र; भारतीय लोकतंत्र, प्रिंटवैल, जयपुर, 2000

नारंग, ए. एस. ; भारतीय शासन एवं राजनीति, गीतांजली पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, 2010

जय, जनक, राज ; भारतीय लोकतंत्र और राष्ट्रपति, परमेश्वरी प्रकाशन, दिल्ली, 2009

गुप्ता, मोहन लाल ; 'भारत में साम्प्रदायिकता की समस्या एवं हिन्दू प्रतिरोध का इतिहास, शुभदा प्रकाशन, जोधपुर, 2018

प्रसाद, अनिरुद्ध ; डेमोक्रेसी, पॉलिटिक्स एण्ड ज्यूडिसियरी इन इण्डिया' दीप एण्ड दीप पब्लिकेशंस, दिल्ली, 1985

करुणाकरन, के. पी. ; 'डेमोक्रेसी इन इण्डिया', इन्टरेल यूटल बुक कानेट, नई दिल्ली, 1978

नारायण, जयप्रकाश ; सामुदायिक समाज रूप और चिंतन, सर्व सेवा संघ, वाराणसी, 1972

तिलक, रघुकुल ; लोकतंत्र : स्वरुप एवं समस्याएं, उत्तरप्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, लखनऊ, 1972

सुरेका मूंगालाल, लोकतंत्र की चादर, त्रिवेणी प्रकाषन, जयपुर, 2002

गुहा, रामचंद्र ; 'इण्डिया ऑफ्टर गांधी : द हिस्ट्री ऑफ द वर्ल्डस लारजेस्ट डेमोक्रेसी' , पीडाकोर न्यू देहली, 2007